आदिवासी समाज की परम्परागत राजनीतिक संरचना एवं उनका बदलता स्वरूप

नन्हकू प्रसाद यादव,

षोधार्थी,
हिन्दी एवं अन्य भारतीय भाषा विभाग,
डॉ0 शकुन्तला मिश्रा राष्ट्रीय पुनर्वास विश्वविद्यालय,लखनऊ

प्रत्येक समाज को नियमित करने के लिए एक जनतांत्रिक व्यवस्था पायी जाती है। यह राजनैतिक व्यवस्था जनतंत्र पर आधारित होकर उस समाज के रीति–नीति, तौर–तरीकों पर नियंत्रण व उनके नियमों को नियमित करने का कार्य करती है। इस राजनैतिक व्यवस्था को संचालित एवं नियमित करने के लिए कुछ राजनैतिक एवं सामाजिक संगठन होते हैं।

कोई भी समाज हो शिक्षित हो या अशिक्षित उसमें राजनैतिक व्यवस्था अवश्य पायी जाती है। आदिवासी समूह भी असभ्य एवं अशिक्षित माना जाता है, फिर भी आदिवासी समूहों में राजनैतिक व्यवस्था पायी जाती है। आदिवासी समूहों में जनतांत्रिक मूल्यों की गौरवशाली परम्परा पायी जाती है। जिसके विषय में प्रसिद्ध आदिवासी लेखिका रमणिका गुप्ता लिखती है –"आदिवासी समूहों में विश्व का सबसे बड़ा जनतांत्रिक तन्त्र पाया जाता है। दुनिया के विकसित एवं अविकसित देशों को उन्होंने ही जनतंत्र सिखाया है। उनके विचार तो पश्चिमी समाज ने ले लिए, समायोजित कर लिए, पर उन्हें ही नकार दिया। आज उन्हीं के अस्तिव पर खतरा है। कहीं ऐसा न हो कि उनके विचार तो हम ग्रहण कर ले पर वे ही न रहें। जिन्होंने विश्व को लोकतंत्र, बराबरी, भाईचारे की भावना एवं आजादी दी, आज उन्हें जिन्दा रखना उनका आदर करना उन्हें अपनाना तथा उनमें अपने अधिकार हासिल करने की चेतना जगाना और सहयोग करना मानवता का तकाजा है /"[1]

आदिवासी समूहों में जनतंत्रिक व्यवस्था का प्रचलन बहुत पुराना है। आदिम युग में भी आदिवासी समूह जनतांत्रिक व्यवस्था से संचालित थे, और आज भी ये समूह उन्हीं राजनैतिक व्यवस्थाओं से संचालित हैं। भिन्न–भिन्न आदिवासी समूहों की राजनैतिक व्यवस्था पृथक थी। कुछ समूहों में ब्रहत् जनतांत्रिक व्यवस्था थी, तो कुछ में आशिंक एवं कुछ में यह व्यवस्था नहीं भी पायी जाती थी। इन समूहों की राजनैतिक प्रतिनिधि चुनने की प्रकिया भी पृथक–पृथक थी। आदिवासी समाज में सरकार व राजनैतिक नामक अपने एक अध्ययन में शपेरा नामक विद्वान ने पाया है कि "आस्ट्रेलिया व अफ्रीका में काफी पहले से ही राजनैतिक व्यवस्था के लक्षण मौजूद थे। इन क्षेत्रों में प्रादेशिक स्थिरता तो नहीं थी लेकिन राजनैतिक व्यवस्था जरूर मौजूद थी। प्राचीन काल में ऐसे आदिवासी क्षेत्रों की भी कोई कमी नहीं थी जो राज्य तो नहीं थे, लेकिन राजनैतिक व्यवस्था के लक्षण मौजूद थे।"[2]

हालांकि जो आदिवासी समूह विमुक्त–घुमन्त प्रवृत्ति के थे उनमें कोई राजनैतिक व्यवस्था नहीं थी क्योकि ये भोजन संग्रह एवं शिकार की खोज में एक स्थान पर नहीं रुकते थे। दूसरी ओर जो समूह समृद्ध एवं उन्नत थे उनमें अवश्य प्रशासनिक व्यवस्था का प्रचलन था। यह राजनैतिक व्यवस्थाएँ वैधानिक प्रशासनिक एवं प्रबन्धन से जुड़े कार्यों का बहुत ही कुशलता से संचालन करती थी। कुछ आदिवासी समूह तो अपनी रक्षा के लिए सैनिक

संगठन भी रखते थे।

इसमें कोई शंका नहीं कि आदिवासी समूहों में राजनैतिक, सामाजिक संगठन होते हैं। इन राजनैतिक सगठनो के विषय में बहुत से मानव वैज्ञानिकों ने राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर इनकी पुष्टि की है। आदिवासी समूहों में ये संगठन इस समाज की आन्तरिक व्यवस्था को बनाने के साथ–साथ इनकी अस्मिता की रक्षा भी करते हैं। आदिवासियों के राजनैतिक संगठनों के विषय में प्रसिद्ध पत्रकार सुधीर पाल लिखते है कि "सामुदायिक और सामूहिक भागीदारी इस परम्परागत लोकतांत्रिक स्वशासन का आधार है। परम्परागत स्वशासी व्यवस्था न सिर्फ राजनैतिक संगठन है, बल्कि सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक और धार्मिक गतिविधियों तथा संसाधनों तक लोगों की पहुँच और संसाधनों को गाँव के हित में इस्तेमाल करने का एक निकाय भी है।"[3]

दरअसल यह राजनैतिक संगठन संसाधनों के सन्तुलित उपयोग का भी प्रबन्धन करते हैं। ताकि प्रकृति का संरक्षण भी बना रहे एवं उनका अस्तित्व भी। उनके अन्दर जियो एवं जीने दो की भावना कूट–कूट कर भरी होती है। यह भावना जनतांत्रिक व्यवस्था का आधार होती है। जनतंत्र में संसाधनों का उपयोग इस प्रकार किया जाता है कि अगली पीढी को भी संसाधनों के उपयोग में मुश्किल न हो। उपर्युक्त तथ्यों के आधार पर कह सकते हैं कि राजनैतिक व्यवस्था आदिम समूहों की रीढ़ की हड्डी है। यह अलग बात है कि सभी जनजातीय समूहों में राजनैतिक व्यवस्था किसी न किसी रूप में पृथक–पृथक आधार पर संचालित की जाती है। लेकिन सबका उद्देश्य एक की जनता का कल्याण होता है।

बील्स तथा होइजर नामक वैज्ञानिकों ने आदिवासियों के राजनैतिक संगठनों के विषय में गहरा अध्ययन किया। अपने व्यापक अध्ययन के आधार पर बील्स एवं होइजर ने बताया कि आदिम समूहों को कुल तीन वर्गो में बाँटा जा सकता है। जिनका उल्लेख निम्नलिखित है।

1. "ऐसे समाज जिनमें कोई राजनैतिक व्यवस्था नहीं होती ।
2. अधिक आबादी वाले कबीलों की राजनैतिक व्यवस्था।
3. जीते हुए राज्यों में राजनीतिक व्यवस्था।"[4]

बील्स के वर्गीकरण में पहलें वर्ग में ऐसे आदिवासी समूह आते हैं जिनमें किसी भी प्रकार की राजनैतिक व्यवस्था नहीं पायी जाती, केवल समूह का मुखिया ही होता है। यह मुखिया परिवार स्तर पर रहकर अपने परिवार का प्रतिनिधित्व करता है। यह समूह आकार में छोटे एवं भू–भाग के आधार पर विस्तृत होते हैं । दूसरी श्रेणी के कबीलों की आबादी आधिक होती है। इन कबीलों का आर्थिक आधार काफी विकसित होता है। यह अधिकतर युद्ध में ही उलझे रहतें है। तीसरी श्रेणी में वे कबीले आते हैं जो अन्य समूहों को जीतकर उनसे जुर्माना वसूल कर उन्हे नष्ट नहीं करते । इस श्रेणी में आबादी अधिक होती हैं। राजनैतिक व्यवस्था कुछ गिनती के लोगों के हाथ में होती है। यह अभिजाय वर्ग के समकक्ष ही होते हैं। उपर्युक्त विभाजन को अधिकतर विद्धान इसलिए मान्यता नहीं देते क्योंकि सभी में राजनैतिक व्यवस्था नहीं पायी जाती ।

भारतीय आदिवासी समूहों की राजनैतिक व्यवस्था का अध्ययन करने पर स्पष्ट होता है कि इन समूहों में सांस्कृतिक एवं राजनैतिक व्यवस्था काफी सुदृढ़ है इन समूहों की राजनैतिक व्यवस्था में विविधिता की भावना पायी जाती है। कुछ समूहों की व्यवस्था तो काफी विचित्र एवं पूरे विश्व में कोई उदाहरण नहीं मिलता। कुछ समूह बाहरी दुनिया के सम्पर्क में आने से विकसित होने लगे। कुछ समूह तो आज भी आखेट पर निर्भर है। चेंचू इरूला और कादर जैसे समूह विकास की दृष्टि से पिछड़े है। कुछ जनजातियां (खासी,

गारो व अपतानिस) विकसित समूह है जिन्हे देखकर कोई कह नहीं सकता कि ये आदिवासी जनता का प्रतिनिधित्व करतें हैं। ये समूह कृषि की आधुनिक तकनीकों का इस्तेमाल कर अपने समूह को विकसित कर रहे हैं। राजनैतिक समूहों के महत्व के विषय में रमणिका गुप्ता लिखती है कि "समुदाय की सभी आवश्यकताओं को समुदाय के भीतर ही पूरा करना और अपनी जरूरतों के लिए बाजार पर कम से कम निर्भर रहना। समुदाय का अपने क्षेत्र पर जितना राजनैतिक प्रभुत्व होगा, उसी अनुपात में वह समूह समृद्ध होगा।"[5]

प्रमुख जनजातीय समूहों की राजनैतिक व्यवस्था का उल्लेख निम्नलिखित है।

संथाल – संथाल भारत के आदिवासी समूहों में एक प्रमुख समूह है जिसमें उनका परम्परागत राजनैतिक प्रशासन का मॉडल होता है। संथाल गाँव बनाकर निवास करते हैं। प्रत्येक गाँव का एक मुखिया चुना जाता है। जिसे माँझी कहा जाता है। इसकी सहायता के लिए एक परिषद् होती है, जिसमें गाँव के प्रतिष्ठित लोग चुने जाते हैं। परिषद् में मुखिया का निर्णय अन्तिम होता है। राजनैतिक व्यवस्था के संचालन के विषय में प्रो0 मधुसूदन त्रिपाठी लिखते हैं कि "प्रशासनिक कार्यो में माँझी की सहायता करने के लिए एक परिषद होती है । साथ ही माँझी के तीन सहायक भी होतें हैं। प्रमुख सहायक परिमानिक कहलाता है जो प्रशासन से सम्बन्धित कार्यो में सहायक होता है। कई गॉवों के मांझियों के बीच में एक और मुखिया चुना जाता है, जिसे परगर्नेत कहते हैं, संथालों के कई गॉवो को मिलाकर एक संघ बनता है। जिसे बंग्लो कहा जाता है। बंग्लो, संथालों का सबसे बड़ा प्रशासनिक संगठन होता है। यह व्यवस्था वर्तमान पंचायती व्यवस्था की त्रिस्तरीय व्यवस्था का ही प्रतिरूप है।"[6]

इस प्रशासनिक व्यवस्था में वर्तमान लोकतांत्रिक व्यवस्था के सभी सरोकार पाये जाते हैं। इस प्रकार आदिवासी राजनैतिक व्यवस्था उन समूहों की जनतांत्रिक भावना को प्रकट करती है। उरांव आदिवासी समूह पश्चिम बंगाल के सुन्दरवन जिले में पायी जाती है। यह जनजाति जनसंख्या की दृष्टि से जनजातियों में दूसरे स्थान पर है। इस समूह में प्राचीन समय में प्रशासनिक व्यवस्था बहुत ही चुस्त हुआ करती थी। इनके गाँवों में पंचायतें हुआ करती थीं। इन पंचायतों को गाँव के सभी विवादों को सुलझाने का महत्त्वपूर्ण दायित्व दिया गया था। उरांव जनजाति की प्रशासनिक व्यवस्था के विषय मे प्रसिद्ध आदिवासी लेखिका डॉ0 शैला चव्हाण कदम लिखती हैं कि "उरांव का परम्परागत राजनीतिक संगठन क्षेत्रीय अधिकारी मण्डल के आधार पर होता है। जिसे परहा–पचांयत कहते हैं। एक परहा (क्षेत्र) सीमावद्ध इकाई होती है। जिसमें एक से तीस तक सामूहिक गाँव सम्मिलित होते हैं। प्रत्येक परहा अपनी खेतिहर भूमि, ग्राम स्थनों, वनपंथों, चरागाहों, जलस्त्रातों एवं तालाबों की रक्षा करता हैं। परहा गाँवो में एक गाँव 'राजगाँव' कहलाता है, 'दीवान गाँव' (प्रधानमंत्री) तीसरा 'पनरे गाँव' (लिपिक), चौथा 'कोटावार गाँव'(शासक) तथा शेष गाँव प्रजा गाँव कहे जाते हैं। इसमें (पहन) तथा महतों को पर्याप्त अधिकार दिये गये है फिर भी ग्राम पंचायत की सहमति के बिना आर्थिक एवं न्यायिक अधिकार प्राप्त नहीं है।"[7]

प्राचीन समय में इनकी परहा पंचायत एक बहुत ही शक्तिशाली संगठन होता था जिसे प्रशासनिक एवं अन्य कार्यो की महत्वपूर्ण जिम्मेदारी थी। वर्तमान में इसका क्षरण हुआ है। डब्ला जनजाति में भी पंचायत की सषक्त परम्परा पायी जाती है। यह जनजाति गुजरात के दक्षिणी भागों में निवास करती है। प्रशासनिक व्यवस्था में ग्राम पंचायत सबसे निचले स्तर पर होती है। पंचायत के मुखिया को ग्राम के सभी स्त्री पुरूष चुनते है। मुखिया को डब्ला पंच कहते है जो समूह से सम्बन्धित समस्याओं को हल करता है। समूचे गाँव का नियत्रण मुखिया के हाथों में होता

है। ग्राम पंचायत अपनी सामाजिक आर्थिक एवं राजनैतिक समस्याओं के लिए एक संविधान बनाती है। जो पंचायत के सदस्यों की सहमति से बनाये जाते हैं। डब्ला जनजाति की दो स्तरीय प्रशासनिक व्यवस्था के विषय में प्रो0 मधुसूदन त्रिपाठी लिखते हैं कि "ग्राम पंचायत के अलावा डब्ला लोगों की भी एक पंचायत होती है। जो समूह के सदस्यों की समस्याओं को हल करती है। विभिन्न डब्ला गाँवों में रहने वाले लोगों की समस्या के समाधान के लिए एक उच्च स्तरीय पंचायत होती है। इस पंचायत के मुखिया को पटेल कहा जाता है। पटेल का सभी डब्ला लोग बेहद सम्मान करते है।"[8]

डब्ला लोगों की प्राचीन प्रशासनिक व्यवस्था में आदिवासी लोगों की लोकतांत्रिक परम्परा पायी जाती है, जिसमें सामूहिक जीवन शैली को महत्त्व दिया जाता है। इन समूहों में मैं की अपेक्षा हम की भावना पायी जाती है। वर्तमान लोकतांत्रिक व्यवस्था को प्राचीन आदिम समूहों की राजनैतिक व्यवस्था से और मजबूत किया जा सकता है। भारत के आदिवासी समूहों में थारू जनजाति अपनी मातृत्व प्रधान सामाजिक व्यवस्था के कारण अन्य समूहों से पृथक है। यह पहाड़ी क्षेत्रों में निवास करने वाली एक स्वांबलम्बी जनजाति है। इस जनजाति में भी प्रशासनिक व्यवस्था पायी जाती है जिसका संचालन पंचायत स्तर पर ही होता हैं। ग्राम समुदाय के लोग आपसी सहमति से ग्राम के मुखिया का चुनाव करते है जिसे प्रधान कहते है। इस जनजाति की मातृत्व प्रधान समाज व्यवस्था बहुत ही महत्वपूर्ण है जिसके जरिए समाज में महिलाओं की भागीदारी को उचित प्रतिनिधित्व मिलता हैं। इस जनजाति के मात्र सत्तामक व्यवस्था के विषय में डॉ0 अंजनी कुमार मिश्र लिखते हैं कि "थारुओं में मातृत्व प्रधान समाज होता है जिसमें समस्त सत्ता परिवार सबसे बड़ी स्त्री में समाहित होते हैं। इसकी मृत्यु के बाद ये अधिकार छोटी लड़की को मिल जाते है। स्त्रियाँ ही घर की मालिक होती हैं। घर, पशु तथा खेतों की पैदावार उनके आभूषण स्वंय की अर्जित आय आदि की वे ही मालिक होती हैं। वे अपने पति की आय का भी इच्छानुसार उपयोग कर सकती है।"[9]

थारू लोगों की मात्रृसत्तामक व्यवस्था भी आधुनिक लोकतांत्रिक परम्परा की ही प्राचीन रुप हैं। वर्तमान लोकतंत्र में प्रत्येक स्तर पर महिलाओं को उचित प्रतिनिधित्व देने का प्रयास किया जा रहा है। थारू समुदाय महिलाओं को सम्मान, आत्मनिर्भरता एवं समान भागीदारी के साथ जीने की प्रेरणा देता है। थारू जनजाति की राजनैतिक व्यवस्था के विषय में प्रो0 मधुसूदन त्रिपाठी का कहना है कि "थारू लोगों में पंचायत संगठन पर्याप्त महत्वपूर्ण है। पंचायत का मुखिया चौधरी के नाम से जाना जाता है। पंचायत की सदस्य संख्या निर्धारित नहीं होती। प्रत्येक गाँव से 4 से 6 व्यक्तियों का मनोनयन चौधरी द्वारा कर लिया जाता है। इस प्रकार पंचायत में 50 से 60 तक सदस्य होते हैं। पंचायत के निर्णय सभी लोगों को स्वीकार करने पड़ते हैं।"[10]

मुंडा जनजाति में सम्पूर्ण राजनैतिक व्यवस्था दो स्तरीय होती है। प्रथम – हातु पंचायत एवं दूसरी परहा पंचायत । हातु पंचायत का प्रचलन गाँव स्तर पर होता है, जिसमें गाँव के सम्मानित सदस्य होते हैं। यही लोग मिलकर गाँव की समस्याओं को सुलझाते हैं। परहा पंचायत इनकी राजनैतिक व्यवस्था का उच्च संगठन होता है। परहा पंचायत का गठन कई गाँवों को मिलाकर किया जाता है। यदि कोई व्यक्ति हातु पंचायत के फैसले से सतुष्ट नहीं है तो वह परहा पंचायत में अपील कर सकता है। उच्च संगठन का फैसला अन्तिम होता है। कई विशिष्ट अधिकार भी परहा पंचायत को मिले हुए हैं, जिनका उपयोग कर जनहित के मुद्दों को लोकतांत्रिक तरीके से सुलझाया जाता है। हमारी इन्ही प्राचीन राजनैतिक परम्पराओं के आधार पर त्रिस्तरीय पंचायत संगठनों का गठन किया गया

है।

आदिवासी जारवा जनजाति में सहकारिता की भावना पायी जाती है, निजी सम्पत्ति की अवधारणा उनमें कभी नहीं रही। ये समूह विमुक्त एवं घुमन्तू जीवन शैली में रहना पसंद करते हैं। सामूहिकता की भावना उनके प्रत्येक कार्य में दिखाई देती है। ये समूह में एक स्थान से दूसरे स्थान के लिए विचरण करते रहते हैं। यह समुदाय जनतांत्रिक मूल्यों की अपनी जीवन शैली में संजोए हुए है। सामूहिक प्रतिनिधित्व की भावना लोकतंत्र का आधार होती है। आदिवासी समूहों के लिए लक्ष्य आधारित विकास की प्रक्रिया की जगह सामुदायिक विकास पर आधारित प्रक्रिया को अपनाना चाहिए, जो उनकी प्राचीन सांस्कृतिक परम्पराओं के अनुरूप होगा। जनतांत्रिक मूल्यों की प्रचुरता के लिए ही पूर्व प्रधानमंत्री पण्डित जवाहर लाल नेहरू ने इन समुदायों के लिए पंचशील की विकास नीति पर बल दिया था।"[11]

- आदिवासी क्षेत्रों के लोगों को स्वंय विकसित होने दिया जाये, हमें उन पर कुछ थोपनें से बचना चाहिए, उनकी परम्परागत कला और संस्कृति को हर तरफ से प्रोत्साहित करना चाहिए।
- प्रशासन और विकास का कार्य करने के लिए उनके बीच से ही लोगों के कार्यदल को प्रशिक्षित करना चाहिए।
- हमें उन इलाकों पर ज्यादा प्रशासन नहीं लादना चाहिए।
- विकास के नये–नये मानक बनाने चाहिए।
- जमीनो एवं वनों पर आदिवासियों के अधिकारों को मान्यता देनी चाहिए।

उपर्युक्त विचारों में आदिवासियों की प्राचीन जनतांत्रिक जीवन शैली का सम्मान किया गया है। आदिवासी समूहों में सिंहफो जनजाति का महत्वपूर्ण स्थान है। यह जनजाति अरूणाचल के लोहित, चागलोग और तिरप जिलों में निवास करती है। अन्य समूहों की तरह इस जनजाति में भी लोकतांत्रिक व्यवस्था के तत्त्व पाये जाते हैं। इस समुदाय में ग्राम पंचायत जैसी कोई नियमित संस्था नहीं होती। फिर भी किसी भी विवाद का समाधान सामंती भावनाओं के अनुरूप नहीं होता, बल्कि कई सदस्यों के बहुमत के आधार पर निर्णय लिए जाते हैं। किसी भी विवाद को सुलझाने के लिए उस समूह के वरिष्ठ, सम्मानित एवं सर्व स्वीकृत व्यक्तियों को आमंत्रित किया जाता है। डॉ0 वेरियर एल्विन ने अपनी पुस्तक "डेमोक्रेसी इन नेफा" में सिंहफों ग्राम परिषद का विस्तृत विवरण देते हुए लिखा है कि इनके ग्राम परिषद को "त्रातुगदाई" अथवा "सिफंग तुंगदाई" कहा जाता है और उसके सदस्यों को "सिहफो सिलंग" कहा जाता है। सामान्यताः "त्रातुगदाई" के तीन सक्रिय सदस्य होते हैं एक गाँव का बूढ़ा होता है तथा दो सदस्यों का गाँव के वरिष्ठ और अनुभवी सदस्यों में चुनाव किया जाता है।"[12]

सिंहफों जनजाति में न्यायिक प्रक्रिया बेहद सर्वषुलभ पायी जाती है। जिससे विवादों का निपटारा सर्वसम्मति से सुलझ जाता है। सिहफों आदिवासी समूह के साथ ही निवास करने वाली 'नोक्ते' भी प्रमुख जनजातीय समूह है। यह समूह पुरूष सत्तात्मक समाज है। ये समूह तिरप जिले में निवास करतें हैं। इनकी सामाजिक नीतियों में जनतांत्रिक मूल्यों की अभिव्यक्ति मिलती है। किसी भी महत्वपूर्ण मामले में परिवार के प्रत्येक व्यक्ति को अपनी भावनाओं को अभिव्यक्ति करने की पूर्ण स्वतंत्रता होती है। इस समूह की राजनैतिक व्यवस्था में मुखिया का पद वंशानुगत होता है। जिसे वर्तमान लोकतांत्रिक व्यवस्था के अनुरूप परिवर्तित करने की आवश्यकता है। इनकी राजनैतिक व्यवस्था के विषय में प्रो0 मधुसूदन त्रिपाठी लिखते हैं कि "नोक्ते समुदाय 'चीफ' के अधीन संगठित होता हैं। एक चीफ के अधीन कई गाँव होते है। चीफ को 'लोवांग' कहा

जाता है। चीफ और उनके वंशजों का एक अलग वर्ग है जिसे 'लोवागजात' कहा जाता है जबकि जनसाधारण को 'सनजात' कहा जाता है।"[13]

उपर्युक्त प्रशासनिक व्यवस्था में शासक एवं जनता दो पृथक वर्ग है जिनके बीच विवाह प्रतिबंधित है। यह व्यवस्था सामन्ती व्यवस्था के अनुरूप है। वर्तमान लोकतांत्रिक व्यवस्था इस व्यवस्था के स्थान पर उपर्युक्त है। जिसमें शासक एवं जनता के बीच कोई भेदभाव नहीं है। शासक वर्ग वंशानुगत नहीं होता।

कोलाम आदिवासी समूह मुख्यतः यवतमाल जिले में निवास करती है। इसके अलावा यह समूह वर्धा, केलापुर और पुसद में भी पायी जाती है। यह गाँव में नियमित नहीं बसते बल्कि गाँवों की बस्तियों से दूर –दराज के क्षेत्रों में अपना निवास बनाते हैं। इनमें जाति उपजाति का विभाजन नहीं होता । यह सामूहिक जीवन शैली जीने वाले प्रकृति प्रेमी होते हैं, जो कि आदिवासी भावनाओं के अनुरूप हैं। यह समुदाय गाय को पालता है, लेकिन दूध नहीं दूहते। दूध को बछड़े को पिला देते हैं, इनमें एकजुटता की भावना कूट–कूट कर भरी होती है जो कि इनकी जनतांत्रिक जीवन शैली के अनुरूप है।

कोलामों में प्रशासनिक व्यवस्था का सुदृढ़ संगठन पाया जाता है। इनकी प्रशासनिक व्यवस्था के विषय में प्रो0 मधुसूदन त्रिपाठी का कहना है कि "कोलामों का प्रमुख नाईक कहलाता है। जो उनकी पंचायत का अध्यक्ष भी होता है। सामुदायिक त्योहार, विवाह, जमीन, वसीहत, उत्तराधिकार आदि के मामले नाईक ही सुलझाता है। कोलामों की पंचायत का उपाध्यक्ष, महाजन कहलाता है। नाईक की अनुपस्थिति में महाजन ही सभा का कामकाज चलाता है और पंचायत की अध्यक्षता करता है।"[14]

कोलाम समूह के मुखिया का पद वंशानुगत नहीं होता, बल्कि पूरी बस्ती के लोगों द्वारा योग्य व्यक्ति को चुना जाता है। इस व्यवस्था में वर्तमान लोकतांत्रिक व्यवस्था के बीज मिलते हैं। नागा आदिवासी समूह भारत के पूर्वात्तर राज्यों में निवास करने वाली एक महत्वपूर्ण जनजाति है। यह जनजाति प्राचीन काल से ही अनेक पंथो में विभाजित हैं। प्रत्येक पंथ की अपनी स्वतंत्र पहचान एवं भाषा है । इतना ही नहीं प्रत्येक नागा समूह की अपनी बोली एवं पोशाक भी पृथक–पृथक होती है। मुख्यतः नागा समुदाय सम्पूर्ण नागालैण्ड में निवास करते हैं यह अगम्य ऊँचाई वाली पहाड़ियों पर स्थायी रूप से अपने गाँवो में निवास करते हैं। नागाओं के युवागृह प्राचीन काल से ही पर्याप्त लोकप्रिय है जिन्हे *"मौरंग"* कहा जाता है। इन युवागृहों में युवकों को परम्परागत जन–जातीय परम्पराओं एवं पुरानी पीढ़ियों के शौर्य व पराक्रम से अवगत कराया जाता है। नागाओं की पृथक–पृथक पहचान होने के बाद भी उनमें राजनैतिक व्यवस्था के कुछ तत्त्वों में समानता पायी जाती है इनमें प्रमुख रूप से जनतांत्रिक भावना की अभिव्यक्ति प्रमुख है। इन पहाड़ी जातियों की लोकतांत्रिक व्यवस्था के विषम में प्रसिद्ध अंग्रेज चिन्तक लिखते हैं, कि "नागाओं की लोकतांत्रिक व्यवस्था और जीवन शैली ने उन्हें अपने छोटे–छोटे गणतन्त्रों के रूप में हजारों वर्षो से जिन्दा रखा है।"[15]

इतना ही नही महामहिम फ्रीमैन थॉमस अली ऑफ बिलिंग्डन ने भारत सरकार के वायसराय और गवर्नर जनरल रहते हुए इस पहाड़ी इलाके का दौरा करने के दौरान कहा था–"ये आपके लोगों की सहनशीलता, पौरूष, हिम्मत–दम और योग्यता का धोतक है कि जब पूर्व और पश्चिम में सदियों से कायम राजवेश बनते और बिगड़ते रहे हैं तब आप अपने इस खुशनुमा पहाड़ी इलाके में अपने वंश के पुराने तौर तरीकों और सिद्धान्तों पर आधारित इस छोटे से गणतंत्र की आजादी बनाये रखे हुए हो।"[16]

निष्कर्षः उपयुक्त विवेचन के आधार पर कह सकते है कि आदिवासी समूहों की राजनैतिक

व्यवस्था आदिम युग से ही लोकतांत्रिक है। लोकतांत्रिक व्यवस्था के मूल्य इनकी सामाजिक राजनैतिक, धार्मिक एवं आर्थिक सभी संथाओं में पाये जाते हैं। इन समूहों की पृथक–पृथक पहचान हो सकती है फिर भी लोकतांत्रिक मूल्य सभी समूहों में पाये जाते हैं। लोकतांत्रिक परम्परा की बुनियाद झारखण्ड के आदिवासी समूहों में आदिम युग से पायी जाती हैं। अंग्रेजों के आने से पहले भी यहाँ राजनैतिक व्यवस्था का स्वरूप एक ग्राम गणराज्य की संघीय व्यवस्था का था जिसकी पहचान आज भी पड़हा–पंचायत, मुण्डा–मानकी के रूप में आज भी देखी जा सकती है। चर्चित आदिवासी साहित्यकार डॉ0 राम दयाल मुण्डा अपने लेख 'झारखंडी एकता साम्प्रतिक समस्याएँ और चुनौतियाँ' में लिखते हैं कि "हर एक गाँव एक गणराज्य की तरह काम करता था और गाँव स्तर का काम ग्राम परिषद द्वारा संचालित होता था। अंतर्ग्रामीण मामलों का निपटारा अंतर्ग्राम परिषद के स्तर पर हुआ करता था। योजना कार्यान्वयन और मूल्यांकन के निर्णय सर्वसम्मति से हुआ करते थे और इस प्रकार के निर्णय सबको मान्य थे।"[17]

इस प्रकार सभी आदिवासी समूहों में किसी न किसी रूप में जनतांत्रिक व्यवस्था के तत्त्व पाये जाते हैं।

सन्दर्भ ग्रंथ सूची

1 प्रो0 मधुसूदन त्रिपाठी, भारत के आदिवासी, संस्करण 2004, ओमेगा पब्लिकेशन्स दिल्ली, पृ0– 154

2 सुधीर पाल, आदिवासियों की पारम्परिक स्वशासन व्यवस्था एवं पंचायती राज, संस्करण– 2017, वाणी प्रकाशन दरियागंज,नई दिल्ली, पृ0 – 09

3 प्रो0 मधुसूदन त्रिपाठी, भारत के आदिवासी संस्करण– 2004, ओमेगा पब्लिकेशन्स दिल्ली, पृ0 – 09

4 रमणिका गुप्ता, आदिवासी कौन,? संस्करण पॉचवा– 2016, राधाकृष्ण प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड अंसारी मार्ग, दरियागंज, नई दिल्ली, पृ0 –30,

5 प्रो0 मधुसूदन त्रिपाठी, भारत के आदिवासी, संस्करण 2004, ओमेगा पब्लिकेशन्स दिल्ली, पृ0– 158

6 डॉ0 शैला चण्हाण– आादिवासी समााज एवं संस्कृति, संस्करण 2016, रोशनी पब्लिकेशन्स, कानपुर, पृ0–60

7 प्रो0 मधुसूदन त्रिपाठी, भारत के आदिवासी, संस्करण– 2004, पृ0– 30 ओमेगा पब्लिकेशन्स, दिल्ली।

8 डॉ0 रावेन्द्र सिहं और डॉ0 वीरेन्द्र सिंह यादव, आदिवासी विमर्शः स्वस्थ जनत्रांत्रिक मूल्यों की तलाश, संस्करण– 2011 पृ0– 290

9 प्रो0 मधुसूदन त्रिपाठी, भारत के आदिवासी संस्करण– 2004, ओमेगा पब्लिकेशन्स, दिल्ली, पृ0– 24

10 बुलेटिन आफॅ द ट्राईबल सिसर्च एण्ड डेवलपमेन्ट VOL – 12, 1998।

11 प्रो0 मधुसूदन त्रिपाठी, भारत के आदिवासी संस्करण– 2004, ओमेगा पब्लिकेशन्स दिल्ली, पृ0 –42

12 वहीं, पृ0– 40

13 वहीं, पृ0– 57

14 रमणिका गुप्ता, आदिवासी साहित्य यात्रा, संस्करण, चौथा– 2016, पृ0– 236

15 वहीं, पृ0– 236

16 डॉ0 रामदयाल मुण्डा, आदिवासी अस्तित्व और झारखंडी अस्मिता के

सवाल, संस्करण– 2016, विनायक कम्प्यूटर्स , दिल्ली, पृ0 – 116

17 हरिराम मीणा, आदिवासी दुनिया, दूसरी आवृत्ति, 2016, राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत, पृ0 – 02

Copyright © 2017, Nanhku Prasad Yadav. This is an open access refereed article distributed under the creative common attribution license which permits unrestricted use, distribution and reproduction in any medium, provided the original work is properly cited.